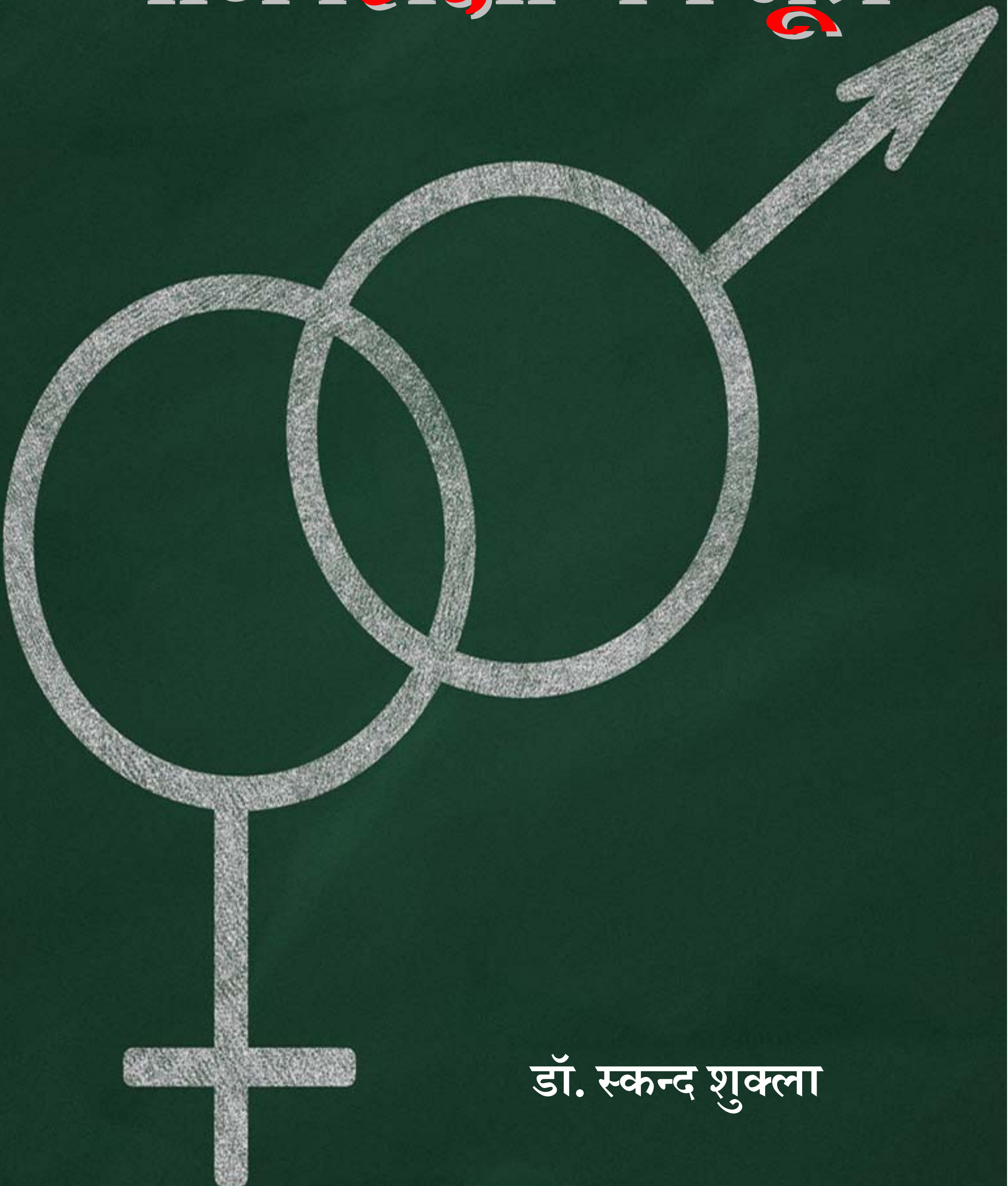
यौन शिक्षा का भूत



डॉ. स्कन्द शुक्ला

यौन शिक्षा का भूत

डॉ. स्कन्द शुक्ला

ब्रह्मचारी मोर[1]

विज्ञान न पढ़ने से कैसी हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न हो जाती है, यह आजकल समाचारों में ठहाके बनकर गूँज रही है. लेकिन सौ ठहाकों पर एकाध दृढ़ स्वर ऐसे भी सुनायी पड़ जाते हैं, जो आँसुओं को मोर के गर्भाधान में योगदान मानते हैं.



मोर-मोरनी को छोड़िए और आगे चलिए. बीसेक साल पहले एक फ़िल्म आयी थी- ‘हम दिल दे चुके सनम’. इसमें एक अंतरंग दृश्य में सलमान ऐश्वर्या से रति-निवेदन कर रहे हैं और वे गर्भ ठहरने का ख़तरा बता कर उन्हें मना कर रही हैं. हम लोग उस दृश्य में ठहाके मारकर उस समय हँसे थे, और हमारे जैसे बहुत से आज भी हँस रहे हैं. लेकिन बहुत सोचनीय प्रश्न यह है कि हँसने के लिए इतने ख़राब चुटकुले हमें मिल ही क्यों रहे हैं?

हास्य की बुरी विषय-वस्तु उसकी दयनीयता का प्रतिबिम्बन करती है. बौद्धिकों के चुटकुले भी ऊँचे दर्ज़े के होते हैं, जबकि छोटी सोच माँ-बहन की गाली-भर पर निपट जाती है. यौन विषयों पर तो चाहे-अनचाहे लोग हँस दिया करते हैं. इस पोस्ट पर भी मेरे कुछ मित्र ठहाके वाला चिह्न बना सकते हैं. फिर जब बात इतनी मौलिक यौन-अशिक्षा की हो, तब तो बहुत से लोगों को हँसने का मौक़ा मिल जाता है.

---

[1] कुछ दिन पूर्व राजस्थान उच्च न्यायालय के एक न्यायाशीश ने बयान दिया था किमोर आजीवन ब्रह्मचारी रहता है. इसके जो आंसू आते हैं, मोरनी उसे चुग कर गर्भवती होती है. मोर कभी भी मोरनी के साथ सेक्स नहीं करता.

छूने पर गर्भ नहीं ठहरता, यह इतना भी निर्विवाद सत्य नहीं है जितना मैं डॉक्टर होने के कारण मानता हूँ. यह अचम्भा तीर की तरह मुझे तब चुभा जब मैंने जाना कि भारत में किशोर-काल में यौन शिक्षा का स्तर क्या है. मुख-मैथुन (oral sex) व गुदा-मैथुन (anal sex), जिन्हें क़ानून अवैधानिक और बहुत से समाजों में अप्राकृतिक मानता है, उनसे भी लोग स्त्री के गर्भ ठहरने से भयभीत रहते हैं. किसी अमुक वस्तु को खा लेने से दिव्य महात्मा-महापुरुष के जन्म की तो ख़ैर कथाएँ ग्रन्थों में बहुश्रुत-बहुपठ हैं ही.

जो बातें इस तरह के अज्ञान से निकलकर सामने आती हैं:

वंशवृद्धि की क्षमता किस पदार्थ में होती है, यह लोगों को पता नहीं. वीर्य (जिसमें शुक्राणु होते हैं) और अण्डाणु के अलावा संसार का कोई भी पदार्थ अकेले या मिलाने पर किसी को भी कैसे पैदा कर सकता है? कुदरत के ये नन्हे तत्त्व हमें तब दिखे, जब हमने माइक्रोस्कोप बना लिया. आप धर्म के आधार पर किसी भी दिव्य दृष्टि की बात करें, लेकिन दिव्य दृष्टियाँ तो दरअसल ये ही हैं. सुदूर स्थिति विशालकाय ग्रहों-तारों को दिखाने वाली दूरदर्शी और समीप सुई की नोक के भी लाखवें हिस्से के बराबर के कीटाणुओं को दिखाने वाली सूक्ष्मदर्शी. ये ही हमें वह सत्य दिखाती हैं जो हमारी आँखों से परे है. जब तक देखेंगे नहीं, मानेंगे नहीं. मानना चाहिए भी नहीं. एक बार शुक्राणु को देख लेंगे, तो जान जाएँगे कि आप पैदा कैसे हुए होंगे. एक बार अण्डाणु का दर्शन कर लेने पर मातृत्व का एक-कोशिकीय हस्ताक्षर समझ में आ जाएगा.



‘जर्म’ (Germ) शब्द का अर्थ कीटाणु बाद में बना, पहले वह बीज था. इसी से ‘जर्माइनल’ (Germinal) और ‘जर्मिनेशन’ (Germination) निकले. कालान्तर में जब बैक्टीरिया देखे गये, तो एककोशिकीय प्राणी भी बीज-से नज़र आये. बस, फिर उनका नाम भी ‘जर्म’ पड़ गया.

योनि के रास्ते गर्भाशय या अण्डवाहिनी में पहुँचा वीर्य ही औरत को गर्भवती कर सकता है. अन्य किसी भी रास्ते यह स्त्री-गर्भाशय तक पहुँच ही नहीं सकता. मुँह से, गुदा से, त्वचा पर मलने से या फिर कुछ भी करने से पुरुष के वीर्य का स्त्री-गर्भाशय से सम्पर्क नहीं किया जा सकता. मुँह से ली हुई हर वस्तु को पाचन-तन्त्र में जाना है और पच जाना है. नाक और मुँह के रास्ते ली हुई वस्तु फेफड़ों में भी जानी बहुत हद तक नियत है. इन दोनों तन्त्रों, जठर-तन्त्र और श्वसन-तन्त्र, का यौनांगों से कोई सम्बन्ध नहीं है. मलद्वार के रास्ते प्रविष्ट वस्तु भी योनि से जुड़े गर्भाशय तक साधारण रूप में नहीं पहुँच सकती, जब तक मलाशय और योनि क्षतिग्रस्त होकर परस्पर जुड़ न जाएँ.

जो जैविक घटना जिस अंग घटती है, उसके लिए कुदरत ने पूरी तैयारी की है. आमाशय में तेज़ाब है, जो हर शुक्राणु को क्षण भर में नष्ट कर देगा. तमाम पाचक-



रस हैं, जिनमें किसी भी का ज़िंदा रहना सम्भव नहीं. श्वसन-तन्त्र वायु के आदान-प्रदान के लिए बनाया गया है. वहाँ एक नन्हा सा जलकण या भोजनकण भी खाँसी पैदा करके यह बताता है कि *"तुम बाहरी हो, यहाँ तुम्हारे लिए कोई जगह नहीं"*.

स्वतः जीवन की उत्पत्ति जो धर्मग्रन्थों में विविध रूपों में वर्णित है, उसे मानने वाले पूरी दुनिया में थे. आज भी हैं. लेकिन दुनिया में एशिया में यह संख्या अधिक है. कारण कि एशियाई समाज आस्थावान् समाज है. आस्था का सम्बन्ध भावना से है. प्रबल भावना का उद्दीपन ही आस्था का सुदृढ़ीकरण है. *"ऐसा मुझे महसूस होता है, क्यों होता है पता नहीं. तुम भी मान लो." "क्यों माने लें?" "इसलिए मान लो क्योंकि तुमसे पहले सब मानते आये हैं. प्रश्न मत करो. लक़ीर पर चलते रहो, फ़क़ीर की तरह."*

फ़क़ीरी और सन्तई वृत्ति से सादी हैं, इसलिए स्तुत्य हैं. लेकिन चिन्तन उनमें पुस्तकीय है, रूढ़िवादी है. उनसे अनुभूति कराने का प्रश्न किया जाएगा तो वे आपकी पात्रता की बात उठा देंगे. आसमान में बृहस्पति ग्रह सबको दिख सकता है, पर बृहस्पति देवता के दर्शन आस्था ही करा सकती है. रिफ़्लेक्टिंग व रिफ़्रैक्टिंग दूरदर्शी आपको मिल जाएं, यह सरल बात है. आस्था तब तक नहीं मिलेगी, जब तक आप इस खेल को समझ न जाएँ. थक-हार कर आप कह ही देंगे *"हाँ, मुझे दर्शन अब होने लगे हैं"*.

पुराने लोग गेहूँ और भूसे से चूहों की उत्पत्ति मानते थे; मगरमच्छ उनके अनुसार पानी में तैरते लट्ठों से उत्पन्न हो जाते थे. यह जीव-विज्ञान का क्या, सामान्य विज्ञान का ही अन्धकार-काल था. दर्शन की बातें करने वाले सुकरात, प्लेटो, अरस्तू चाहे कुछ भी कह लें, उन्हें विज्ञान की मोटी-मोटी बातें भी न पता थीं. मगर वह उनका ज़माना था, जब तकनीकी नहीं थी. जब किसी को पता नहीं था कि कोशिका किसे कहते हैं? किसी ने कोशिका देखी ही न थी. मनुष्य के अंगों का प्रत्यक्ष दर्शन ही विरलतम बात थी. तब तालीम का मतलब फ़लसफ़े (दर्शन) होता था- जितना ऊँचा कल्पित दर्शन, उतना विद्वान व्यक्ति. बस बात ख़त्म. *(वैज्ञानिक*

पी.सी. रे और मेघनाद साहा ने प्राचीन भारत में उच्च तकनीक और विज्ञान के पतन के लिए जिन कारणों को जिम्मेदार ठहराया वो हैं (i) जाति व्यवस्था का पुनरुत्थान जिससे 'सोचने' और 'करने' में भीषण जाति विभाजन हुआ और (ii) समाज में पहले से व्याप्त अमूर्त आध्यात्मिक दर्शन और शास्त्रार्थ की प्रवृत्ति जिसे श्रेष्ठ माना जाता था. Thema Books की The Scientist in Society देखें).

फिर हमारा प्रत्यक्ष ज्ञान बढ़ने लगा. हमने वह देखना-सीखना शुरू किया, जो अब तक केवल कल्पना के सिद्धान्तों पर आधारित था. विज्ञान इसी प्रत्यक्षीरकरण का इन्द्रियजन्य स्वरूप ही तो था! इन्द्रियजन्य सत्य के प्रति तिरस्कार कैसा? जो दिखता और सुनाई देता है, उसे अधूरा बता कर तिरस्कृत करना क्यों? अनुभवों को अर्ध-सत्य कहते हुए अनुभूतियों की बातों में जनता को उलझाना किस लिए?

अनुभवों को समझे-समझाये बिना जो समाज सीधे अनुभूतियों की बात करता है, उसके भाग्य में ऐसा ही बुरा हास-परिहास आता है. यह हँसी जब थमती है, तो चेहरे पर दयनीयता का अन्धकार फैल जाता है. यह दयनीयता वह है जो हमें अतीत से जोड़े हुए है. यह वह आँवनाल (umbilical cord) है हमारी, जो गिरी ही नहीं.

जानते हैं जब किसी शिशु की आँवनाल न गिरे या देर से गिरे तो उसे मेडिकल-भाषा में किसका इशारा माना जाता है? शिशु की प्रतिरोधक क्षमता की हालत बहुत-बहुत बुरी है. प्रतिरोध अँधेरे का, प्रतिरोध अज्ञान का- हो नहीं रहा, हो नहीं पा रहा.



स्त्री का भोकाल

मासिक धर्म में स्त्री ध्वंस धारण करती है. वह कुछ बनाती नहीं, आत्मसंहार करती है. अपने ही तन को विनष्ट कर वह चक्र-क्रम को आगे बढ़ाती है. शरीर से रक्त बिन्दुओं-मांसखण्डों के निःसरण के साथ गर्भाधान की सम्भावनाएँ भी नष्ट हो जाती हैं. इस माह जीवन नहीं पनपा. अगले माह फिर देखा जाएगा.

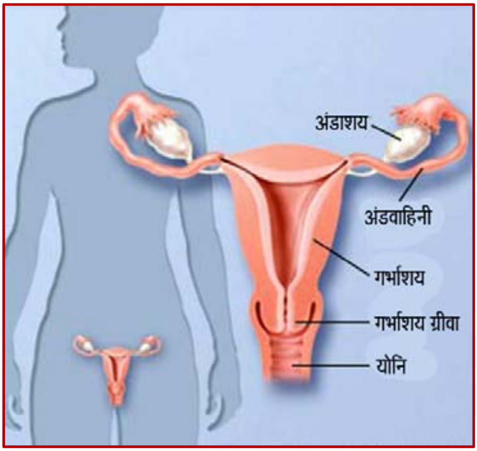
हर महीने इस ध्वंस का मकसद आप तब तक नहीं समझ सकते, जब तक आप स्त्री को न समझें. स्त्री के मन पर ढेरों दार्शनिक बातें की जाती रही हैं, लेकिन तन को इतना क्षुद्र मान लिया गया कि उसपर चर्चा ही नहीं की गयी. या यों कहिए कि तन के बारे में उन्हें कुछ ढंग से पता ही नहीं था. मन के बारे में कल्पित बातें की जाती रहीं, तन के सुदृढ़ तथ्य तब पता चले जब आधुनिक विज्ञान ने हर रहस्य तार-तार करके उद्घाटित किया.

दर्शन की यही समस्या है. वह मूर्त को एकदम किनारे कर अमूर्त को साधने चल देता है. ठोस को बूझे बिना तरल और वायवीय में तैरना चाहता है. स्थित को जाने बिना अनिश्चित की तलाश में भटका करता है.

आइए मूर्त स्त्री की बात करें. वह जो हाड़-मांस की बनी है, जो न देवी है और न नरक में घसीटने वाली तृष्णा, बस एक जीव है. जो पुरुष का प्रतिलिंगी पूरक है, न उससे बेहतर है और न बदतर.

हर सामान्य स्त्री के पास एक गर्भाशय होता है, जिससे दो अण्डवाहिकाएँ (या अण्डवाहिनियाँ) निकलती हैं. इन अण्डवाहिकाओं के समीप उनके सम्पर्क में दो अण्डाशय रहते हैं. इन्हीं अण्डाशयों से प्रत्येक माह एक अण्डाणु सन्तान बनने हेतु अण्डवाहिनी से होता हुआ गर्भाशय को चलता है, इस आशा में कि रास्ते में कहीं भी उसकी शुक्राणु से भेंट हो सकती है. भेंट होगी, तो वे मिल जाएँगे. मिल जाएँगे,

तो एक नया जीव बनेगा. वह एक कोशिकीय जीव, जो अण्डवाहिनी या गर्भाशय में सृजित हुआ है, अब गर्भाशय की किसी दीवार में चिपक कर धँसने की क्रिया आरम्भ करेगा. फिर उसका विकास शुरू.



आप किसी आम स्त्री से पूछकर देखिए कि उसका गर्भाशय कहाँ है, वह बता न सकेगी. पढ़ी-लिखी मैडमें भी मोहल्ले की कामवालियों के समतुल्य सिद्ध हो जाएँगी. और-तो-और पुरुष भी. किसी को जानकारी ही नहीं अमुक अंग होता कहाँ है? और बातें दर्शन की, मीमांसा की, तत्त्वज्ञान की. किसे क्या कहा जाए? हँसा जाए या रोया जाए? ये कैसी नक़ली बुद्धिजीविता है?

एब्स्ट्रैक्ट से पहले कॉन्क्रीट को पकड़िए. सामान्य स्त्री का गर्भाशय लगभग सात सेंटीमीटर लम्बा अंग होता है जो कूल्हे यानी पेल्विस के भीतर स्थित होता है. गर्भाशय कूल्हे की हड्डियों के निचले घेरे के भीतर होता है. सामान्यतः वह पेट में नहीं होता और उसे छूकर पता नहीं किया जा सकता. इस गर्भाशय के आगे स्त्री का मूत्राशय होता है और पीछे मलाशय, जैसे प्रकृति ने कोई बड़ा खजाना किसी कूड़े के ढेर में छिपाया हो. इस गर्भाशय का निचला हिस्सा गर्भग्रीवा से मिलता है, जिसे सर्विक्स भी कहा जाता है. यह गर्भग्रीवा और नीचे योनि या वैजाइना से मिलती है जो बाहर को खुलती है.

ऊपर गर्भाशय में दोनों ओर अण्डवाहिनियाँ खुलती हैं, जिनका काम अण्डाशय में बने अण्डाणु को हर माह उसमें पहुँचाना होता है. गर्भाशय कोई कमज़ोर अंग नहीं, यह मांस से भरपूर होता है. और हर माह इसकी मोटाई हॉर्मोनों

के प्रभाव में घटती-बढ़ती रहती है. गर्भावस्था में तो यह अपने चरम पर पहुँच जाती है क्योंकि इसे अपने भीतर पल रहे एक शिशु को रक्षित-पोषित करना होता है.

अण्डाशय या ओवरी की स्थिति भी निचले पेट में नाभि के नीचे होती है. हर महीने किसी एक अण्डाशय से एक अण्डाणु निषेचन की सम्भावना लिए अण्डवाहिनी में प्रवेश करता है और वहाँ से गर्भाशय में पहुँचता है. यदि शुक्राणु मिला तो ठीक, नहीं तो वह मासिक धर्म के विनाश के साथ योनि के रास्ते बाहर को निःसृत हो जाता है.[2]

इन सामान्य जानकारियों से महिलाओं को यह भी पता चलता है कि अण्डाशय और गर्भाशय का दर्द अमूमन नाभि के नीचे वाले हिस्से में होता है. हाँ, गर्भ ठहरने के बाद यह गर्भाशय आकार और मज़बूती में बढ़ता है और ऊपरी अंगों को धकेलता-हटाता बड़ा होते हुए अन्ततः पूरे पेट को घेर लेता है. किन्तु किसी सामान्य अगर्भवती स्त्री में यह एक कोने में नीचे को अपनी दोनों मित्र अण्डाशयों और दोनों अण्डवाहिनियों-संग निष्क्रिय पड़ा रहता है.

[2] (ovary= अण्डाशय; Fallopian tube= अण्डवाहिनी; uterus= गर्भाशय; cervix= गर्भग्रीवा; vagina= योनि)

सेक्स का गुलदस्ता

प्रकृति के अनुसार ज़्यादा बड़ी और मौलिक घटना स्त्री-पुरुष का मिलन नहीं, बल्कि स्त्री के अण्डाणु का पुरुष के शुक्राणु से मिलन है.

प्रत्येक जीव का स्वभाव स्वयं की वंशवृद्धि है. वह मरना-मिटना नहीं चाहता, उसे सृष्टि में बने रहने के यत्न करते रहने होंगे. जीवों के शरीरों में मौजूद गुप्तांग इसी के लिए निरन्तर प्रयासरत रहते हैं. स्त्री के अण्डाशय और पुरुष के वृषण में यही प्रक्रिया युवावस्था में नित्य चला करती है, ताकि अधिकाधिक जनों को उत्पन्न किया जा सके.

अण्डाशय, जो स्त्री के निचले पेट में (नाभि के नीच वाले हिस्से) में होते हैं, हर महीने एक अण्डाणु का निर्माण करके उसे पास की अण्डवाहिनी (या अण्डवाहिका) में छोड़ देते हैं. यहाँ से वह शुक्राणु से मिलने के लिए चलता हुआ धीरे-धीरे आगे बढ़ता है. मिलन हुआ तो ठीक, अन्यथा गर्भाशय-गर्भग्रीवा-योनि के रास्ते मासिक धर्म में शरीर से बाहर हो जाता है.

दोनों अण्डाशय में से किस से अण्डाणु निकलेगा, यह पहले से तय नहीं होता. वह किसी भी अण्डाशय से निकल सकता है. यों यह भी ज़रूरी नहीं कि स्त्री (या पुरुष) के पास दोनों अण्डाशय या वृषण हों ही. एक से भी पूरी ज़िन्दगी सन्तानोत्पत्ति की क्रिया आगे बढ़ सकती है.

सेक्स का पूरा ताना-बाना इसी अण्डाणु-शुक्राणु मिलन को सुनिश्चित कराने के लिए है. मादा मछलियाँ और मेढकियाँ अपने हज़ारों-लाखों अण्डे बाहर जल में छोड़ देती हैं. नर मछलियाँ और मेढ़क उन्हीं के पीछे अपने शुक्राणु प्रवाहित कर देते हैं. यह काम लगभग संग-संग करना होता है ताकि अधिकाधिक अण्डाणुओं का शुक्राणुओं से सम्पर्क हो जाए और ज़्यादा-से-ज़्यादा नये जीवों का निर्माण हो. इन

जीवों में एक साथ ढेरों सन्तान पैदा करने का प्रयास होता है. बहुत से (बल्कि ज़्यादातर) अण्डाणु, शुक्राणु से मिलन से पहले व बाद में परजीवियों का आहार बन जाएँगे. बहुत से बाहर के प्रतिकूल पर्यावरण में स्वतः नष्ट हो जाएँगे. जो बचेंगे, वे विकसित होंगे. और उनमें से भी कुछ ही आगे जाकर विकासक्रम में बढ़कर पूर्ण विकसित मछलियाँ या मेढक बनेंगे.



अण्डाणु और शुक्राणु का यों बाहर पानी में मिलना और मिलकर एक नया जीव बनाना 'बाह्य निषेचन' कहलाता है. इसमें यौन-कर्मकाण्ड उतना विकसित नहीं होता, जितना हम जैसे मनुष्यों और अन्य स्तनपायियों में होता है. जल में जीवन का यह विकास इस बात का प्रमाण है कि जीवन जल से थल की ओर आया है. लेकिन पानी में एक भयावह शीतलता और परायापन है. वहाँ ख़तरे अधिक हैं. वहाँ जीवन को बचाने के लिए जिस तरह संघर्ष करना पड़ता है, उस तरह और उतना ऊपरी जीवों को नहीं करना पड़ता.

सरीसृपों (जिनमें मगरमच्छ-जैसे जीव आते हैं), पक्षियों व स्तनपायियों में ज्यों-ज्यों हम ऊपरी पायदानों की तरफ़ बढ़ते हैं, यह निषेचन बाह्य से आन्तरिक होता जाता है. इसी आन्तरिकता के साथ ही मातृत्व के अन्य विकसित आयाम गर्भाधान-गर्भविकास-स्तनपान क्रमशः धीरे-धीरे जुड़ते चले जाते हैं.

आन्तरिक निषेचन के क्या लाभ हैं? मनुष्य या अन्य जीव जिस तरह से सम्भोग करते हैं, उससे इन प्रजातियों में क्या सुनिश्चित होता है? अगर लाभप्रद न होता, तो प्रकृति इस तरह से इन प्रयासों को अंजाम न देती. बाह्य निषेचन की तुलना में आन्तरिक निषेचन अण्डाणु और शुक्राणुओं को सुरक्षित माहौल प्रदान करता है. सेक्स द्वारा जैसे ही स्त्री-शरीर के भीतर शुक्राणुओं पहुँचने लगते हैं, वैसे ही बाह्य

परजीवियों और प्रतिकूल पर्यावरण से उनके और अण्डाणु के नष्ट होने का ख़तरा नहीं रहता. फिर यह निषेचित अण्डाणु भ्रूण बनकर माँ के पेट में पनपता है और एक निश्चित गर्भाधान-काल के बाद शिशुरूप में बाहर आता है.

लेकिन गर्भ में सन्तानों को रखकर पोषित करने के साथ एक समस्या भी है. बाहर खुले में तो मछली-मेढकी चाहे जितने भी अण्डाणु छोड़ दे, लेकिन भीतर वह हज़ारों बच्चों को विकसित नहीं कर सकती. उसके शरीर की भी एक सीमा है: वह एक समय में एक साथ सबको पोषण कैसे मुहैया करा पाएगी? इस कारण प्रकृति में फिर बदलाव होता है. मादाओं के शरीर में बनने और शुक्राणु से मिलन हेतु निकलने वाले अण्डाणुओं की संख्या में कमी आती जाती है. मगरमच्छों, चिड़ियों और स्तनपायियों जैसे कुत्तों-बिल्लियों-खरगोशों में एक से अधिक अण्डाणु निषेचित होकर गर्भाशय में विकसित होते हैं, लेकिन हाथियों-मनुष्यों-गायों इत्यादि में यह भी मुश्किल होता जाता है. यहाँ एक बार में यह संख्या एक ही सन्तान तक सिमट जाती है.

फिर एक दूसरी बात भी है. छोटे जीवों की तुलना में बड़े और ऊपरी पायदानों के जीवों के विकास में समय भी अधिक लगता है. एक मछली का शिशु जितनी जल्दी विकसित होकर आत्मनिर्भर हो जाता है, उसकी तुलना तनिक मानव-शिशु से कीजिए. यही देरी गर्भाधान-काल के रूप में सामने आती है.

मोटे तौर पर कहा जाए तो सेक्स और सन्तानोत्पत्तिकी क्रियाओं में कोशिकाओं और आनुवंशिक सामग्री की बर्बादी बहुत की जाती है. बाह्य निषेचन में अत्यधिक, आन्तरिक में कुछ कम लेकिन फिर भी बहुत. जानते हैं प्रकृति ऐसा क्यों करती है?

कारण अधिकाधिक स्वस्थ सन्तानों को संसार में लाना है. कुदरत नहीं चाहती कि वंशवृद्धि की इस प्रक्रिया में विकृतियाँ और विकार नयी पीढ़ी के साथ आगे जाएँ. जो विकृति-विकारग्रस्त हों , वे पहले ही नष्ट हो जाएँ. जो पनपें, वे हर तरह से योग्य और स्वस्थ हों.

सेक्स का झमेला

नौ महीनों बाद एक बच्चा पैदा करने के लिए इतनी बर्बादी किसलिए? पुरानी धार्मिक मान्यताएँ जो सेक्स को घिनौना बताती हैं और यौन-क्रिया में हिंसा-वृत्ति देखती हैं, वे कहीं-न-कहीं कुछ ढाँपने-छिपाने का प्रयास कर रही हैं. उन्हें डर था और है कि अगर इस मनुष्य-वृत्ति को ढीला छोड़ा गया तो समाज में बिखराव हो जाएगा. यौन क्रिया को विवाह से जोड़कर देखने के पीछे भी यही बात काम करती है. आदमी की औरत से शादी दो व्यक्तियों का मेल बाद में है: पहले यह जैविकी का सामाजिकी से विवाह है. बायलॉजी को उन्मुक्त छोड़ना सामाजिक ढाँचे और सत्ता को चुनौती देने का काम करने लगेगी. प्रकृति के नियम में सेक्स होता है, विवाह नहीं|

मगर फिर विवाह और यौनकर्म का सम्मेल हर जगह एक सा कहाँ है. वह हो भी नहीं सकता. जैविकी तो हर मनुष्य की एक ही है, क्योंकि वह कुदरती है. लेकिन सामाजिकी मनुष्य ने स्वयं बनायी है. और जो आदमी द्वारा निर्मित वस्तु है, उसमें शाश्वत होने का भाव कैसे हो सकता है?

इसलिए धर्म पर अटूट आस्था स्थापित करने के पीछे का मनोविज्ञान उसे प्राकृतिक साबित करना है, जो वो है नहीं. *"आप मान लीजिए कि मेरा वाला मजहब कुदरती है. यह मैंने या किसी आदमी ने नहीं बनाया, यह हमेशा से ऐसे ही था. यह आदिकालिक है. यह प्राकृतिक है. यह मूलतः यों ही था, यों ही है, यों ही रहेगा."*

शाश्वत कुछ भी नहीं है. न कोई समाज , न लोकाचार और न कोई मानव-मूल्य ही. भूगोल तक बदल जाता है. ग्रह-तारे बदल जाते हैं. यहाँ तक की शरीर की क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ भी एक सी सदा-सर्वदा नहीं रहती, न रहेंगी.

आपने सूक्ष्मदर्शी तले अमीबा देखा न भी हो पर उसका नाम शायद ज़रूर सुना होगा. अमीबा जैसे एककोशिकीय प्राणी अमूमन अलैंगिक प्रजनन करते हैं. उनमें हमारी तरह नर-मादा नहीं होते. एक कोशिका कुछ समय बाद दो में बँट जाती है और फिर कुछ समय बाद दो से चार हो जाती हैं. मनुष्य भी तो ऐसे बँट सकता था. एक आदमी से वह दो बन जाता और फिर दो से चार. सेक्स जैसे ताम-झाम की भला क्या आवश्यकता थी?

आम मनुष्य की सोच यह है कि यह बर्बादी केवल पुरुष के शरीर में होती है- वह ही केवल एक अण्डाणु के निषेचन के लिए लाखों शुक्राणु छोड़ता है. ज़रूरत तो केवल एक शक्राणु की है. बाक़ी सभी नष्ट होंगे. लेकिन स्त्रियाँ में बर्बादी नहीं होती, यह सोचना भ्रम है. उनके शरीर में हर माह निकलने वाले एक परिपक्व अण्डाणु के बदले आठ-दस अण्डाणु अर्धविकसित ही नष्ट हो जाते हैं.

रमेश, जो कि एक स्वस्थ पुरुष है, हर सेकेण्ड 1500 के लगभग शुक्राणु बनाता है. रमेश के कितने बच्चे हैं? एक या दो. या तीन-चार-पाँच-दस-पन्द्रह. इमरती देवी जब पैदा हुई थी, तो बीस लाख अल्पविकसित अण्डे लेकर जन्मी थी. वे सभी कहाँ गये? उनमें से कितने रमेश के साथ मिलकर बच्चों में बदल पाये?

इस 'हिंसा' में, इस नाश के पीछे भी कोई है जो जी रहा है. इस मार-काट से भी किसी का भला हो रहा है. प्रकृति रमेश या इमरती देवी के लिए नहीं सोचती. वह प्रजाति के स्तर पर मनुष्य-जाति के लिए सोचती है. या फिर वह उससे भी बड़ी सोच रखती है और समूचे जीवन के लिए सोचती है. या फिर वह कुछ सोचती ही नहीं. यह सोचना मैं सोच रहा हूँ और आपको सोचवा रहा हूँ. खरबों वीरान तारों और खरबों निर्जन आकाशगंगाओं को 'सोचकर' बनाया नहीं गया, नहीं तो इतने पदार्थ के सृजन में किफ़ायत बरती जाती. सुजन-समझदार आदमी सफ़ेद कमीज़ पर काला दाग लगाता है. यहाँ मौत की काली कमीज पर सफ़ेद टीका है ज़िन्दगी का.

सेक्स की तैयारी के लिए की गयी बर्बादी केपीछे मूल उद्देश्य मनुष्य-जाति का उत्तरोत्तर विकास है. हर जीव पैदा नहीं हो सकता; हर जीव को कुदरत पैदा नहीं

करना चाहती. वह चाहती है कि सबसे श्रेष्ठ ही प्रजनन के फलस्वरूप संसार में आएं और फिर वे ही प्रजनन करके अपनी प्रजाति को आगे बढ़ाएँ (‘श्रेष्ठ’ के जैविक अर्थ में, न कि मनुष्यों के दम्भी और शोषक सामाजिक अर्थ में). प्रकृति की यही मूल मंशा है.

लेकिन ऐसा हमेशा हो ही जाएगा ज़रूरी नहीं. उसकी गोद में इंसान ही एकमात्र बच्चा नहीं है. साधारण माइक्रोस्कोपों से न दिखने वाले वायरसों से लेकर भीमकाय नीली ह्वेलों तक उसके पास हर साइज़ का शिशु है. ये बच्चे आपस में भिड़ सकते हैं, एक-दूसरे को चोटिल कर सकते हैं, यहाँ तक कि एक-दूसरे को मिटा भी सकते हैं. फिर जिस गोद में, जिस हाथ में ये सब हैं, वह ही उसका एकमात्र हाथ नहीं. कुदरत के सहस्रों हाथ हैं. वह न जाने कुछ सोचती है और अचानक दूसरे हाथ से इस हाथ की सारी बनावट गिरा देती है. एक ही पल में सब समाप्त! फिर किसी हाथ में नये शिशु गढ़ने लगती है.

लैंगिक प्रजनन इसलिए होता है कि नर और मादा अलग-अलग व्यक्ति हैं, अलग-अलग परिवारों से हैं. उनकी कोशिकाओं में मौजूद डी.एन.ए. में विविधता है. शुक्राणुओं और अण्डाणुओं का निर्माण साधारण कोशिका-विभाजन से नहीं होता, विशिष्ट ढंग से होता है. फिर इस विशिष्ट निर्माण के बाद जब सेक्स होता है तो नर का शुक्राणु मादा के अण्डाणु के डी.एन.ए. से मिल जाता है. दो डी.एन.ए. मिले और जो तीसरा डी.एन.ए. इस दुनिया में आया, वह न पूरी तरह अपने बाप-सा है, न



माँ-सा. वह दोनों-सा है और नया भी. जब कोई कहता है कि *"मेरी बिटिया मुझसी है"* या *"मेरा बेटा मुझसा है"*, तो वह केवल बाह्य-सतही बात कर रहा होता है या फिर थोड़े-बहुत गुण-स्वभाव की. उसने यह नहीं देखा-जाना होता है कि बिटिया के मस्तिष्क की कोशिकाओं में अमुक काम मम्मी या डैडी किससे मिलता है या फिर हड्डियों का घनत्व किससे मेल खाता है.

आदमी-औरत चमड़ी की सतह-भर नहीं हैं. और भी बहुत-बहुत कुछ हैं उसके भीतर. आपकी सन्तान पूरी तरह से आप-सी तभी हो सकती है, जब वह अलैंगिक प्रजनन से पैदा हो. दो मिलकर किसी को पैदा करेंगे, तो वह दोनों-सा/दोनों-सी होगा/होगी. मिलन से उत्पन्न हुआ यह अंतर, यह बदलाव, ज़रूरी है ताकि मानव विकास करता रहे. संतान में मौजूद विविधता अगर संयोग से पर्यावरण की परिस्थितियों में सटीक बैठी तो नई पीढ़ी की जीवित रहने की सम्भावना और लचीलापन अधिक होगी. सेक्स में शामिल यह बर्बादी और जटिलता इसी सम्भावना की कीमत है.

'मर्द का दर्द' बनाम 'औरत का दर्द'

ऑनलाइन ब्रिटिश अख़बार 'द इंडीपेंडेंट' में बीते दिनों एक लेख प्रकाशित हुआ जो यह तथ्य रेखांकित करता था कि महिलाओं में मासिक धर्म के समय होने वाला दर्द हृदयाघात के समतुल्य होने के बाद भी चिकित्सकों का ध्यान उतना आकर्षित नहीं करता. ज़ाहिर सी बात है कि ऐसे लेख से नारीवादियों को डॉक्टरों के समूचे वर्ग को कटघरे में खड़े करने के अपने काम में बिंदु चुनने में तनिक देर नहीं लगी: *''मासिक-धर्म का दर्द एक महिला-दर्द है, उसे पुरुष नहीं समझ सकते और वे उसके प्रति एक उदासीन और शुष्क रवैया प्रदर्शित करते हैं. डॉक्टर चूँकि लालची और स्वार्थी होते हैं, इसलिए वे पैसा चूसने के लिए हृदयाघात के मरीज़ों को अधिक ध्यान से देखते हैं और 'मासिक-पीड़िताओं' को कम.''*

समय हर वस्तु के बेतुके लैंगिकीकरण का है: '*औरत की हर चीज़ औरताना है और जो कुछ भी उसमें या उसका औरताना है वह कहीं-न-कहीं मर्दों द्वारा तिरस्कृत है*', ऐसी बात उठाना स्त्रियों के पक्ष को सबलता से प्रस्तुत करना है. मगर औरत को गुप्तांग के चश्मे से देखने की इस हरक़त में बहुधा एक मनुष्य और उसकी लिंग-निरपेक्षता बहुत पीछे छूट जाती है.



दर्द का महत्त्व डॉक्टर इस बात से नहीं तय करते कि वह मर्द को हो रहा है अथवा औरत को. दर्द को देखने के लिए उनके पास कई बेहतर मानदण्ड होते हैं. **पहला मानदण्ड आंगिक है: किस अंग से वह दर्द पैदा हो रहा है.** दाँत का भीषण दर्द चाहे जितना कष्ट दे, वह एपेंडिक्स के कम कष्टकारी दर्द से कम तवज्जो इसलिए पाता है क्योंकि एपेंडिक्स पेट में है. वहाँ वह फट सकती है, पेट में मवाद फ़ैल सकती है और रोगी मर सकता है. यह

स्थिति भयानक दाँत-दर्द में भी शायद कभी न आये. जोड़ों में यूरिक एसिड बढ़ने से होने वाला दर्द गाउट के कारण चाहे जितनी शिद्दत का हो, उसका मुक़ाबला किसी पेट में मवाद या आँत फटने से नहीं किया जा सकता क्योंकि उसमें मरीज़ की जान नहीं जा रही.

दूसरा मानदण्ड दर्द की प्रकृति का है. ऐंठन वाला दर्द, फटन वाला दर्द, जलन वाला दर्द, भिंचन वाला दर्द- तमाम तरह के दर्द अलग-अलग अनुभूतियाँ पैदा करते हैं. पित्त की थैली में पथरी हो, आँतों की रुकावट हो अथवा वृक्कों से पेशाब मूत्राशय में लाने वाले यूरेटर में पथरी का दर्द- ये सभी कोलिकी दर्द के प्रकार हैं, जहाँ मांसपेशी की एक खोखली नली रुकावट को आगे ठेलने की कोशिश करती है, नाक़ामयाब होती है और एवज़ में रोगी को भयानक दर्द दे जाती है, जो कुछ क्षण रहता है, फिर बहुत हल्का पड़ जाता है या गायब भी हो जाता है. हृदयाघात के दर्द में एक 'सेन्स ऑफ़ इम्पेंडिंग डूम' या 'तबाही का पूर्वाभास' होता है, जो यह इशारा करता है कि सब कुछ अब नष्ट हो जाएगा. चमड़ी अथवा अन्य स्थानों पर होने वाले फोड़ों में एक टपकन वाला दर्द होता है और गठिया-रोगों से सूजे जोड़ों में एक अकड़न वाला दर्द. हर दर्द में एक ही तरह की भीषणता या एक ही तरह की प्रकृति की की उम्मीद नहीं की जा सकती है.

दर्द की यह भीषणता हर रोगी में मिलेगी ही, ऐसा भी नहीं है. हमने हृदयाघात के रोगी डॉक्टर के पास हल्की उलझन के साथ चल कर आते भी देखे हैं और सुई चुभने पर लोगों को मूर्च्छित होते भी देखा है. गोली लगने पर भी लोग मुस्कुराते रह सकते हैं और दूसरे का ख़ून देखकर भी बेहोश होकर पलट भी जाते हैं. यहाँ अन्तर व्यक्ति-व्यक्ति का है. हर आदमी एक मेल का नहीं. एक ही अंग में दर्द, एक ही तरीक़े से होने के बाद भी सबकी अनुभूतियाँ भिन्न हैं.

फिर **डॉक्टरों को दर्द की अवधि पर ध्यान देना होता है.** भीषण दर्द अमूमन दीर्घकालिक नहीं होते: अगर होते हैं तो वे लगातार नहीं होते रहते. दीर्घकालिक दर्दों के कारण अलग हैं, अल्पकालिक पीड़ाएँ अलग वजहों से होती

हैं. कुछ दर्द दीर्घकालिक होने के बाद भी घटते-बढ़ते रहते हैं. निदान व उपचार में इन सब बातों पर ध्यान देना पड़ता है.

दर्द को औरताना बताना एक बिलावजह की बात है. स्त्री के तन में भी एक हृदय है, एक मस्तिष्क है, दो फेफड़े हैं, दो गुर्दे हैं. ये सभी अंग लैंगिक पहचान के मोहताज नहीं हैं, इनमें होने वाली हर बीमारी पुरुषों जितनी ही कष्टकारी होती है. हृदयाघात चाहे मालती देवी को पड़े या राम कुमार को, उसे उसी तरह की इमरजेंसी वाली स्टाइल में देखा जाता है और देखा जाना चाहिए भी. कोई भी मासिक धर्म का दर्द एक मरते हृदयाघात-रोगी, एक तड़पते कैंसर के मरीज़ अथवा एक कराहते पैंक्रियेटाइटिस-पीड़ित का कैसे मुक़ाबला करेगा भला!

हर स्त्री को मासिक-धर्म के समय दर्द नहीं होता, कुछ को ही होता है. बहुत थोड़ी स्त्रियाँ ऐसी हैं जिनमें यह दर्द बहुत तेज़ हो सकता है. उनके लिए हर महीने होने वाली यह प्रक्रिया एक अट्ठाइस-दिनी कष्ट का नाम होता है. इसके लिए वे तमाम देसी नुस्खे आज़माती हैं, दवाएँ खाती हैं, स्त्री-रोग विशेषज्ञों के चक्कर लगाती हैं.

अगर महिलाओं के ही यौन-अंगों से उठने वाले दर्दों की बात करें, तो प्रसव का दर्द हर मासिक के दर्द से बहुत-बहुत-बहुत आगे है. बिना किसी एनेस्थीज़िया के ज़रा सामान्य डिलीवरी या ऑपरेशन से बच्चा पैदा करने की सोचिए ज़रा, आपकी रूह काँप जाएगी. गर्भपात के कारण होने वाला दर्द अपने तरीक़े से महिला को पीड़ा पहुँचाता है. फिर तमाम ऐसे रोग होते हैं, जो औरतों को तथाकथित अपने-अपने ढंग से औरताना दर्द दे सकते हैं. गर्भाशय में विकसित होने वाले फाइब्रॉइड ट्यूमर, एंडोमेट्रियोसिस, पेल्विक इंफ्लेमेटरी डिज़ीज़- सभी भीषण, भयावह कष्टकारी हो सकते हैं.

एक विशिष्ट बीमारी जो औरतों में गर्भाधान के समय भयानक दर्द पैदा कर सकती है और जान का संकट भी, एक्टॉपिक प्रेग्नेंसी व रप्चर है. इसमें निषेचित अण्डाणु गर्भाशय में रोपे जाने की बजाय अण्डवाहिनी में ही रुककर विकसित होने

लगता है. वह बेचारी पतली सी वाहिका उस बढ़ते भ्रूण को सँभाल कहाँ सकेगी! नतीजन फट जाती है और औरत के प्राण संकट में आ जाते हैं. फिर ऑपरेशन करके उसकी किसी तरह जान बचायी जाती है.

अब ऐसे दर्दों की फ़ेहरिस्त में मासिक धर्म का दर्द भला कहाँ ठहरेगा? हृदयाघात और आँत-अग्न्याशय की सूजनों को अगर दरकिनार भी कर दिया जाए, तो स्त्रियों के पास 'अपने' अंगों के कारण होने वाले भीषण दर्द की एक अलग सारिणी है, जिसमें हर महीने होने वाला सामान्य रक्तस्राव बहुत नीचे स्थान पाता है. ऐसे में डॉक्टरों की लापरवाही पर उँगली उठाना और उन्हें धनलोलुप सिद्ध करना नाहक ही उन्हें बदनाम करना है.

पहली बात तो मासिक धर्म के कारण होने वाले दर्द के लिए अमूमन साधारण दर्द की दवाएँ ही इस्तेमाल की जाती हैं. दूसरी बात भारत में उन्हें या तो मरीज़ स्वयं मेडिकल स्टोर से ख़रीद कर खा लेती है या वह परामर्श के लिए स्त्री रोग विशेषज्ञ के पास जाती है. पुरुष चिकित्सकों के पास जाने में, जहाँ तक सम्भव हो वह परहेज़ करती है. ऐसे में क्या उसकी पीड़ा के लिए गायनेकोलॉजिस्ट को उसे इमरजेंसी ले जाकर कर ड्रिप चढ़ाने की कोशिश करनी चाहिए या आई.सी.यू. में रख लेना चाहिए!

अगर हृदयाघात पर शोध में इतना पैसा ख़र्च हो रहा है और हुआ है, तो उसके पीछे कारण हैं. हृदयाघात स्त्री-पुरुषों दोनों में मृत्यु की एक बड़ी वजह बनकर उभरा है. मोटापे, मधुमेह और उच्च रक्तचाप के साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है. इसको अगर त्वरित गति से सही समय पर उपचारित नहीं किया गया, तो रोगी को भीषण परिणाम झेलने पड़ सकते हैं. ऐसे में हर महीने होने वाले मासिक धर्म से इसकी तीव्रता की तुलना सतही और ग़ैर-ज़रूरी है.

समझ में हर जगह लैंगिक पहचान ठूँसनी ज़रूरी नहीं. हृदय स्त्री के भी है, फेफड़े-आँतें-गुर्दे भी. दर्द दर्द है. वह जिन रोगों में भयावह होता है, उन्हें तय करने के लिए डॉक्टर पढ़-लिख कर उनसे जूझते हैं. यहाँ तक कि स्त्री एवं प्रसूति-रोग

विशेषज्ञ भी मानती हैं कि मासिक से अधिक भीषण दर्द के कारण स्त्री-गुप्तांगों में अन्य कई हैं और वे उनपर पूरा ध्यान देती हैं. एक्टॉपिक रप्चर की एक मरीज़ इस बात को स्पष्ट करने के काफ़ी होगी, जब वह महिला ज़िन्दगी-मौत के बीच झूलती है.

अंग को समझिए, रोग को समझिए. दर्द व्यक्तिगत अनुभूति है, लेकिन हँसता हुआ हृदयाघात-रोगी भी परलोक सिधार जाएगा, इसलिए उसे पहले डॉक्टर का ध्यान चाहिए. अकारण छद्म स्त्रीवाद के नामपर भ्रान्तिपूर्ण धारणाएँ बना लेना और डॉक्टरों पर मिथ्या दोषारोपण बहुत सी ग़लत छवियों को गढ़कर सामने पेश करता है, जिससे हानि अन्ततः सभी की होती है.

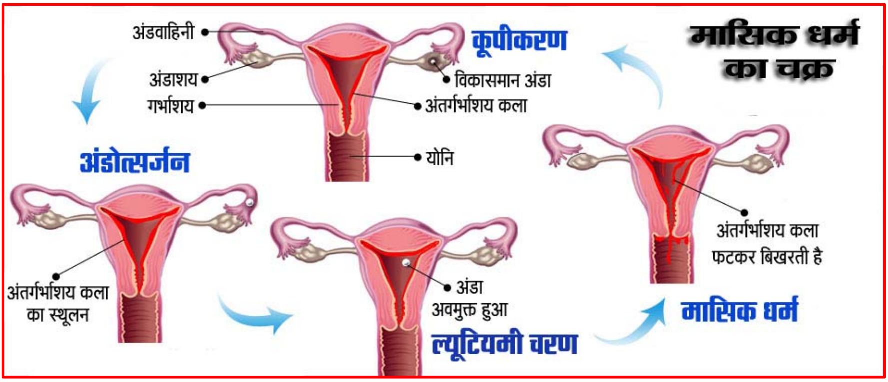
पुनश्च: लेख ब्रिटेन का है. इसे पढ़कर भारत की चिकित्सा-व्यवस्था के बारे में अपनी धारणाएँ गढ़ लेना बड़ी अपरिपक्वता होगी.

खूनी लीला का सीक्रेट

"पर मम्मी, पीरियड्स होते ही क्यों हैं?" तेरह साल की मुग्धा अपने शरीर में आये बदलाव के बारे में अब भी असहज है.

उसकी मम्मी ने उसे सामान्य स्त्रियों में हर माह होने वाले मासिक चक्र की जानकारी दी है. उन्होंने उसे बताया है कि उसके शरीर में आया यह परिवर्तन इस बात का संकेत है कि अब वह बड़ी हो रही है. बड़े होने का तात्पर्य युवा होने से है. युवा होना ही बड़ा होना है. और बड़ा इसलिए होना कि मम्मी की तरह उसे भी मम्मी बनना है ताकि वह भी किसी को जन्म दे सके. प्रकृति नारिदेह में यौवन का प्रमाण मासिक धर्म के रूप में प्रस्तुत करती है. हर महीने अब मुग्धा के शरीर में वे चार हॉर्मोन अपने घटते-बढ़ते स्तरों के साथ बदलाव लाया करेंगे. हर मासिक चक्र के चौदहवें दिन एक अण्डाणु अण्डाशय से निकलकर अण्डवाहिनी-गर्भाशय की ओर चल देगा. हर माह, चूँकि शुक्राणु से उसका मेल तो होगा नहीं, वह अट्ठाईसवें दिन रक्त-मांस के संग शरीर से योनिमार्ग द्वारा निःसृत कर दिया जाएगा.

मुग्धा मातृत्व को लेकर अचम्भित तो है, लेकिन अब भी उसे मासिक धर्म को लेकर असन्तुष्टि बनी हुई है. युवा होना और मम्मी बनना उसे आश्चर्य में डाल रहा है,



पर क्या प्रकृति के पास मासिक धर्म के अलावा हर माह इस चक्र को चलाने का और कोई तरीक़ा न था? क्या योनिमार्ग से यह रक्तपात ज़रूरी था? क्या प्रकृति स्त्री-देह पर सहज बदलाव के संग मातृत्व का हस्ताक्षर नहीं कर सकती थी?

यों अगर हम जंगल में रहते, तो मासिक धर्म के ख़तरे क्या कम होते? ख़ून की गन्ध तमाम हिंस्र जीवों को हमारी ओर आकर्षित करती और हम सरलता से उनका शिकार बन जाते. फिर साफ़-सफ़ाई रक्तपात के संग कहाँ सरल होती? कैसे हर महीने संक्रमणों से स्त्रियाँ निर्जन वनों में अपनी देह की रक्षा कर पातीं?

मासिक धर्म अगर बहुत मौलिक होता, तो वह हर जीव या कम-से-कम बहुत से जीवों में होता. मेढकी को मासिक धर्म नहीं होता, न मादा मगरमच्छ हर महीने रक्तस्राव के इस दौर से गुज़रती है. चिड़ियों की नाना प्रजातियों में भी इस ढंग की योनिगत प्रक्रिया नहीं देखी जाती. और फिर स्तनपायी? उनमें भी मासिकधर्म हर जाति में कहाँ होता है? गायों-शेरनियों-बिल्लियों-सुअरनियों में यह अनुपस्थित है: गर्भ में बच्चे तो वे भी विकसित करती हैं और दूध पिलाती हैं. केवल मनुष्य, कुछ वानर प्रजातियों और चमगादड़ों में माहवारी क़ुदरत ने बनायी है. मगर मुग्धा का सवाल सामने यक्षप्रश्न बनकर खड़ा है कि आख़िर इस रक्तपात की आवश्यकता ही क्या थी?

मुग्धा के इस 'क्यों' को जानने के लिए आपको आँव को समझना पड़ेगा. वह माँस का लोथड़ा जो गर्भकाल में गर्भवती के गर्भाशय से एक नाल द्वाराभ्रूण तक पोषण पहुँचाता है और अपशिष्ट गन्दगी को वापस माँ के शरीर में, ताकि वह उसका उत्सर्जन कर सके. गर्भ में पल रहे भ्रूण/शिशु के लिए आँव ही उसकी मम्मी से उसका कॉन्टैक्ट पॉइंट है. उसी के माध्यम से वह गर्भाशय से जुड़ा हुआ है: उसी के ज़रिये उसका विकास-क्रम अनवरुद्ध नौ महीनों तक चलता रहेगा.

गर्भ में विकसित होता भ्रूण एक पक्का परजीवी होता है. उसे माँ के तन से अधिकाधिक पोषण चाहिए: इस प्रयास में वह गर्भाशय की दीवार में धँसने की कोशिश करता है ताकि ख़ून की नलिकाओं से सीधे सम्पर्क स्थापित कर सके. यह

धँसाव हर स्तनपायी जाति में अलग-अलग गहराई तक होता है. गायों और सुअरनियों में भ्रूण गर्भाशय की भीतरी दीवार तक पहुँच कर रुक जाते हैं. ये सबसे शिष्ट भ्रूण हैं, इनमें परजीविता सबसे कम है. कुत्तों-बिल्लियों में धँसाव होता है, मगर थोड़ा सा. इनमें थोड़ा परजीवी-भाव बढ़ा है. मानवों-वानरों में यह अपने चरम पर पहुँच जाता है. इनके भ्रूण सर्वाधिक माँस में पैठने की प्रवृत्ति रखते हैं.

हम भले ही संस्कारों के कारण सहज रूप में माता और शिशु को परम प्रेम का प्रतीक समझें, लेकिन प्रकृति के जैविक इशारे कुछ और ही कहते जान पड़ते हैं. माँ एक जीव है, जिसके पास पोषक तत्त्वों का भण्डार है. भ्रूण जो अभी-अभी बना है, उसे ज़िन्दा रहना है. कैसे जिएगा? जब खाना मिलेगा? खाना कौन देगा? वह देगी जिसके गर्भ में वह बना है? कितना चाहिए? जितना ज़्यादा-से-ज़्यादा मिल सके. इसलिए धँसो गर्भाशय की इस मोटी माँसल दीवार में. पैठो और पहुँचो इसकी ख़ून की नलिकाओं में. सोखो अधिकाधिक पोषक तत्त्व. बढ़ो, विकसित होओ शीघ्र.

लेकिन पोषिका ऐसे क्यों होने दे भला? भ्रूण की इस हरक़त से उसे ख़ुद को बचाना है. अन्य भ्रूण भी तो होंगे आगे? केवल इसी भ्रूण को सब कुछ कैसे दे दिया जाए? कैसे इस स्वार्थ के सामने झुक जाया जाए? इसलिए हर महीने जिस जगह भ्रूण के आने की सम्भावना हो, उसकी दीवारों को ही क्षत-विक्षत कर दो. बहा दो वह ख़ून-माँस योनि के रास्ते. परजीविता न पनपी, एक महीना बीता. अगले माह फिर देखा जाएगा. लड़ाई जीत ली गयी, मगर युद्ध जारी रहेगा.

माँ-भ्रूण के बीच यह रस्साकशी कुदरत ने अकारण नहीं बनायी. विज्ञान यह मानता है कि मासिक धर्म में होने वाले रक्तस्राव के रास्ते स्त्री उन भ्रूणों को बाहर निकाल फेंकती हैं, जो ढंग से उसके गर्भाशय की भीतरी भित्ति पर चिपक कर धँस नहीं पाये हैं. यह एक प्रयोग है यह जानने का कि सबसे परिपुष्ट और योग्य भ्रूणों को ही वह अपने गर्भ में स्थान देगी विकसित होने के लिए. उसकी चयन-प्रक्रिया बहुत कठिन है ताकि सबसे सबल भ्रूण ही उसके गर्भ में पल कर शिशुरूप में बाहर नया

जन्म पा सकें. ऐसा होने से मानवों की जाति में श्रेष्ठ लोग ही जन्म पाएँगे और जातिगत विकास सुनिश्चित होगा.

मानव-स्त्रियों और उन अन्य प्रजातियों में भी, जिनमें मासिक धर्म होता है, गर्भाशय की दीवारों में यह धँसाव आँव द्वारा सम्पन्न होता है. माँस का यह लोथड़ा गर्भाशय की मांसल भित्तियों से चिपकता भर नहीं है, वह उनके भीतर पैठकर माँ की रक्त-वाहिनियों से सीधे सम्पर्क स्थापित कर लेता है ताकि भ्रूण के लिए ज़्यादा-से-ज़्यादा पोषण जुटा सके. विज्ञान ऐसे आँव को हीमोकोरियल आँव कहता है. विज्ञान के अनुसार यह हीमोकोरियल आँव का प्रकार ही हमारी स्त्रियों-वानरियों-चमगादड़ियों में मासिक धर्म का कारण है.

पूछ रही है. यही वह जवाब है जो हमें अपनी स्त्रियों को देना है. मासिक धर्म की पहेली का उत्तर विकासवाद में छिपा है. मासिक धर्म वाली जातियाँ सन्तानों के चुनाव में सबसे ज़्यादा ध्यान रखती हैं वे हर किसी को अपने गर्भ में नहीं जगह दे सकतीं पलने-बढ़ने के लिए.

मुग्धा एक मानवी है और उसके शरीर ने स्वयं को गर्भधारण के लिए तैयार कर लिया है. लेकिन यह तैयारी लचर नहीं है, ढीली-ढाली नहीं है. इसकी यह रक्तिम जटिलता विकास-क्रम द्वारा सोच-समझ कर उठाया गया क़दम है.



परदे में रहने दो...

काली पन्नी में सैनिटरी पैड पकड़ा कर मेडिकल स्टोर वाले ने अपनी समझ से उसी शिष्ट गोपनीयता का परिचय दिया है, जो सदियों से हमारे समाज में व्याप्त रही है.

मनुष्य-जीवन के दोनों सिरे जन्म और मृत्यु उसे साधारण सिद्ध करने का काम करते हैं. चाहे उसकी सामाजिकी उसे कितना ही विशिष्ट स्थान प्रदान करती हो अथवा जीवन में आगे करे, लेकिन जैविकी उसे उसी तरह इस संसार में लाती और ले जाती है, जैसे हर साथी आता रहा है. परिवार की हैसियत से वह अस्पताल की सुविधाएँ प्राप्त कर सकता है, लेकिन जन्म से पहले का गर्भकालिक विकास और मृत्यु से पहले का प्रतिपल दैहिक क्षरण, बहुत हद तक उसके वश में आज भी नहीं.

गुप्तांग शरीर के सर्वाधिक तिरस्कृत में शुमार हैं: अगर उन्हें अंगों के समाज में रूप के आधार पर वर्गीकृत किया जाए तो वे बहुत नीचे स्थान पाएँगे. कोई आश्चर्य नहीं कि लियोनार्डो द विन्ची जैसा दार्शनिक यह कहने को मजबूर हुआ कि *"मनुष्य की सम्भोग-क्रिया और उसमें शामिल गुप्तांग इतने विरूप हैं कि अगर उसमें चेहरों*



का सौन्दर्य, तन का श्रृंगार और कामोन्माद न होते, तो सम्भवतः प्रकृति ने मानव प्रजाति को ही खो दिया होता."

मगर देह के इन अंगों के प्रति गोपन-भाव मनुष्य में इनकी विरूपता के कारण नहीं, बल्कि इनके कार्यान्वयन के कारण अस्तित्व में आया है. दो जीवों का परस्पर सम्मेल के बाद तीसरे को उत्पन्न कर देना, किसी भी अन्य जैविक क्रिया पाचन-श्वसन-उत्सर्जन से कहीं अधिक जादुई और विस्मयकारी जान पड़ता है. कहने की आवश्यकता नहीं कि इसके क्रियान्वयन में पैदा होने वाले सुख पर आदिकाल से ही हर विधान-निर्माता और पन्थ-स्रष्टा की भृकुटियाँ ऐसी तनीं कि आज तक हर समाज को उनसे मुक्त होने में समस्या पेश आती रही है.

यौनक्रिया में व्यक्तिगत सुख का साधारण भाव-भर नहीं है, उसमें वर्तमान पीढ़ी और भविष्यगत पीढ़ी, दोनों के लिए एक सम्पत्तिबोध भी निहित है. मनुष्यों की बढ़ती आबादी के साथ परिवारों-कुनबों-खानदानों के रूप में विकसित होते समाजों में यही सम्पत्तिबोध नियमन का काम करता है. सन्तानोत्पत्ति के समय लिया गया सुख उसे लत में बदल कर व्यभिचार को जन्म दे सकता है: व्यभिचार के फल-स्वरूप जन्मने वाली सन्तानों में परस्पर सम्पत्ति-संघर्ष बहुत अधिक बढ़ सकता है.

नतीजन प्रजनन के लिए हर समाज में लम्बी नियमावली तय की गयी. प्रजनन कैसे किया जाए, किससे किया जाए, कितना किया जाए, कब किया जाए- सभी बातों पर पन्थरूपी प्राचीन-मध्ययुगीन संविधानों में इतना लिखा गया जितना अन्य क्रियाओं पर सम्मिलित रूप से भी नहीं.

यौनक्रिया की तुलना में अन्य क्रियाएँ नितान्त वैयक्तिक हैं. यही एक ऐसा तन्त्र है जिसमें आप निर्वैयक्तिक होते हैं, दूसरे से जुड़कर तीसरे को संसार में लाते हैं और इस तरह से पूरे संसार से एक शृंखला-रूप में जुड़ते जाते हैं. मगर यह जुड़ाव गुह्य-गुप्त-गोपन इसलिए होना चाहिए था क्योंकि इसका सार्वजनिकीकरण समाज में अतिचार-अनाचार को जन्म देकर बहुतों को पतित-पथभ्रष्ट कर सकता था.

किन्तु इस निषेधभाव के पीछे एक दूसरी भावना भी धीरे-धीरे बलवती होती गयी. जिन्होंने नियमावलियाँ गढ़ीं, उन्होंने स्वयं को इनसे ऊपर रखने और नियमित रास्तों से इतर चलने की व्यवस्था कर डालीं. यह सब तब तक निर्बाध चलता रहा, जब तक आधुनिक शिक्षा-पद्धति के प्रचार-प्रसार ने यौनांगों की संरचना और क्रियाओं पर विस्तृत-समुचित प्रकाश नहीं डाला.

यौन-नियम जब भी गढ़े गये, स्त्रियों के प्रति सम्पत्तिभाव के कारण उनके लिए क्या करना है और क्या नहीं की फ़ेहरिस्त पुरुषों की तुलना में बहुत अधिक लम्बी बनायी गयी. स्त्री-यौन संरचना और क्रिया को घिनौना सिद्ध करना इसी प्रयास का एक अंग था ताकि वे नियमों को तोड़कर प्रयोगवृत्ति अपनाकर बेलगाम न हो सकें. फिर आहिस्ता से इसी स्त्री-यौनवृत्ति को मातृत्व की मिष्ट-मर्मल अनुभूति और कर्तव्य से जोड़ दिया गया: ऐसा करने से सहज ही स्त्रियों को ऊँचा स्थान देते हुए उन्हें सम्पत्तिभाव से जकड़ देना सम्भव हो गया.

समाज बिना नियमन के चले, ऐसा हो नहीं सकता. और नियमन जब हो, तो यौन-क्रियाओं का न हो ऐसा भी सम्भव नहीं. उन्हें तो सबसे पहले नियमित करना होगा. किन्तु नियमन की यह प्रक्रिया भी स्वतः एकाएक जन्म नहीं लेती, इसके लिए धीरे-धीरे कई पीढ़ियाँ कई सही-ग़लत धारणाएँ-क्रियाएँ गढ़ती-करती किसी नतीजे पर पहुँचती हैं. फिर वे नतीजे भी कोई ज़रूरी नहीं कि हर देश और काल में एक से ही हों: अलग-अलग स्थानों और अलग-अलग कालखण्डों में यौननियमन अलग-अलग होते रहें हैं और आगे भी होते रहेंगे.

वैश्विकता चाहे संसार को कितना भी एक रंग में रँग देने का प्रयास करे, प्राकृतिक विविधता को वह मिटा न सकेगी. मेडिकल-स्टोर-विक्रेता का काली पन्नी में मासिकधर्म हेतु इस्तेमाल होने वाले पैडों को बेचना उसी क्षेत्रीय गुह्यता का क्रियान्वयन है, जो गुप्तांगों की संरचना और क्रियाओं को प्रकट-प्रस्तुत होने से रोकती है. उसे डर है कि कहीं इनका प्रकटीकरण समाज में अकारण कोई ध्वंस-भ्रंश न ले आये.

मेडिकल-स्टोर-विक्रेता दवाओं को बेच रहे हैं, किन्तु वे उस आधुनिक सोच को अपनी दुकान में दाखिल नहीं कर सके हैं जिसने पुराने सभी पन्थ कहलाते संविधानों का बहुत सा भंजन करके नया समाज गढ़ा है.

वे अतीत की सोच के साथ आधुनिकता का विक्रय कर रहे हैं.

राष्ट्रव्यापी चिंता- मर्दानगी

*"**धात** की बात न उठाना बन्धु ,क्योंकि वह तो सभी स्वस्थ पुरुषों में बनती है और बनती रहेगी."*

लड़का अठारह साल का है और उसकी बुद्धि उसके गुप्तांग की जड़िता-बन्दिनी है. उसके सामने प्रेम भरे जीवन की आशाएँ हैं, अरमान हैं, उम्मीदें हैं. हर आशा-उम्मीद-अरमान के मूल में सर्जना है. हर सर्जना के केन्द्र में उसका पुरुषत्व है. और पुरुषत्व के मूल में उसका गुप्तांग. इसलिए वह मेरे पास वीर्य और गुप्तांग की समस्या को लेकर खुल रहा है.

मैं वीर्य और गुप्तांगों का कोई विशेषज्ञ नहीं, जोड़ों के रोग देखता हूँ. लेकिन जिस तरह से 'ऑल रोड्स लीड टु रोम' वाली कहावत चलती है, उसी तरह 'ऑल एल्मेंट्स लीड टु द जेनिटल्स' वाली बात भी सच साबित होती है. और फिर भारत का रोगी संस्कारों में आहार-विहार की बातें सुनता आया है. उसे कोई बीमारी हो जाए, उसकी शंका अन्ततः इन्हीं दो बिन्दुओं पर जाकर ठहरती है- 'खाने में कोई परहेज़?' और 'धात गिरती है'. अतः हर ओ.पी.डी. में खान-पान के सैकड़ों सवाल उठाये जाते हैं. हर डॉक्टर को कई बार गोपन गुप्तांग-गाथा सुननी ही पड़ती है. पहली बात सपाट प्रश्न के रूप में प्रस्तुत की जाती है , तो दूसरी अपराधबोध से ग्रस्त स्वीकृति के साथ सामने लायी जाती है.

लड़के को लगता है कि उसका शिश्न (लिंग) टेढ़ा है. उसे यह भी बोध हो रहा है कि उसका वीर्य पतला हो रहा है. उसे यह भी चिन्ता सता रही है कि वह हस्तमैथुन की लत से मुक्त नहीं हो पा रहा. अब वह गर्लफ्रेंड कैसे बनाएगा? अब शादी किस तरह हो सकेगी? और फिर बच्चे?

लड़के से मैं कहता हूँ कि शिश्न और वीर्य का परस्पर उतना सम्बद्ध नहीं है जितना वह सोचता है. शिश्न एक पुरुष-अंग है, पेशाब और वीर्य को निःसृत करने का. वीर्य का काम स्त्री के अण्ड से मिलकर नये भ्रूण का निर्माण करना होता है.

सृष्टि में शिश्नहीन जन्तु भी हैं और उनमें भी वीर्य बनता है. उन प्रजातियों के पुरुष अपने गुप्तांग को स्त्री-शरीर में प्रविष्ट नहीं कराते; वीर्य-अण्ड का मिलन उनके यहाँ बाहर खुले में होता है. मेढक इस तरह के यौन-सम्बन्ध का सबसे बड़ा उदाहरण है.

मैं उसे आगे समझाता हूँ कि शिश्न पुरुष की यौन-क्रीड़ा की जीभ है. इससे वह सेक्स-सुख की प्राप्ति कर पाता है. जिस तरह मानव की जिह्वा तमाम रसों को अपनी तन्त्रिकाओं द्वारा अनुभूति करके मस्तिष्क तक उन्हें पहुँचाती है और उनका भोग पाती है, उसी तरह यह काम शिश्न करता है. उसके अग्रिम सिरे पर, जिसे शिश्न-मुण्ड कहा जाता है, तमाम तन्त्रिकाएँ यौन-उत्तेजना को महसूस करती हैं. जिह्वा और शिश्न मात्र अनुभूतियों को बटोरने का स्थान हैं, शेष सारा काम खोपड़ी के भीतर बैठा दिमाग़ करता है.

फिर मैं उससे कहता हूँ कि शिश्न की लम्बाई को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दे दिया गया है. अत्यधिक लम्बा पुरुष-गुप्तांग वीर्य-उत्क्षेपण और यौन-सुख दोनों की कोई गारण्टी नहीं देता है. केवल स्त्री योनि के मुखांग पर वीर्य-आलेप भर

से भी स्त्री गर्भवती हो सकती है, और कई बार सालों-साल पूर्ण प्रयास के बाद भी लोग माँ-बाप नहीं बन पाते. सेक्स का सुख मात्र गुप्तांग की योनि में प्रविष्टि पर ही निर्भर नहीं है; यह अन्य अनेक कारणों पर भी बेहद निर्भर है.

सच तो यह है कि इस उम्र में सन्तान-वन्तान कैसे करते हैं, इसकी उसे न तो कोई जिज्ञासा है और न जानकारी. उसका ध्यान यौन क्रीड़ा की सफलता पर अधिक टिका है. कहीं ऐसा न हो कि वह चूक जाए और उसकी प्रेयसी-पार्टनर उसे कच्चा समझ कर तिरस्कार-सहित त्याग दे.

लड़के ने सुना है कि वीर्य अस्थिमज्जा (bone marrow) में बनता है. मैंने उसे बताता हूँ कि अस्थिमज्जा में मात्र रक्त बनता है. वीर्य का मज्जा से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं. पुराने लोगों ने मर्दानगी को क़ीमती माना होगा, इसलिए वीरता से वीर्य का सम्बन्ध जोड़ लिया. और फिर नन्हीं-नहीं सफ़ेद बूँदों की कथा को खींचते-खींचते मज्जा तक ले गये. मैं उससे कहता हूँ परम कायर के भी सैकड़ों पुत्र को सकते हैं, परम वीर भी निरबंसिया हो सकता है. परम कायर भी कामक्रीड़ा-पटु-प्रवीण होकर दसियों-सहस्रों स्त्रियों को तुष्ट कर सकता है और अतिशय प्रतापी भी केलिक्रीड़ा-भूमि का भगोड़ा साबित हो सकता है.

लड़के को मैंने बता दिया है कि सेक्स तो पूरे ऑर्केस्ट्रा की प्रस्तुति है; वह भ्रमवश उसे अकेला रियाज़ समझ रहा है. और वीर्य? उसके निर्माण का सेक्स से कोई सम्बन्ध नहीं है. वीर्य नित्य बना करता है पुरुष-वृषणों में, जो चमड़ी के कोषों में नीचे झूला करते हैं. ऐसा इसलिए कि उनमें शुक्राणुओं के निर्माण के लिए बाकी शरीर से एक डिग्री कम तापमान की आवश्यकता होती है. इसलिए पुरुष अपने वृषण शरीर के भीतर नहीं रखता; उन्हें बाहर कोषों में स्थान देता है.

लड़का यही नहीं जानता था कि वीर्य और शुक्राणुओं में क्या भेद है. मैं उसे बताता हूँ कि वीर्य में शुक्राणु होते हैं, मगर उसमें और भी बहुत कुछ होता है. तमाम रसायन, अनेक पदार्थ. फिर वीर्य कोई पतला-वतला नहीं होता. वह कोई देसी-जरसी गाय का दूध थोड़े ही है! पुरुष की सन्तानोत्पत्ति-क्षमता वीर्य में शुक्राणुओं की संख्या, उनकी गतिमत्ता, उनका स्वरूप तय करते हैं. जिसके वीर्य में जितने

स्वस्थ-एथलेटिक-सुरूप शुक्राणु, वह सन्तान जनने के हिसाब से उतना श्रेष्ठ मर्द! लेकिन शिश्न के आकार और सेक्स-क्रीड़ा से इस संतानोत्पति वाली मर्दानगी का कोई लिंक नहीं है.

सेक्स एक ऑर्केस्ट्रा-प्रस्तुति है, तो शिश्न एक वाद्य-यन्त्र जिसका प्रयोग एक कला है. यौन सुख और सन्तान-सुख उससे उपजने वाली लघुकालीन और दीर्घकालीन आनन्दप्रदायी उपलब्धियाँ. बहुत अच्छे यन्त्रों वाला बहुत अच्छा ऑर्केस्ट्रा भी कोई आनन्द न दे सके, ऐसा सम्भव है. यह भी हो सकता है कि लघुकालिक सुख देने वाला दीर्घकालिक सुख न दे पाये और दीर्घकालिक सुख देने वाला सदैव अपनी प्रेयसी-पत्नी को लघुकालिक सुख से वंचित रखे.

लड़के को आज ज्ञान मिला है कि वीर्य कोई धातु नहीं जिसे सोना-चान्दी की तरह सँभाल कर तिजोरी में ताला मारकर रखा जाए. वह बनता रहता है, बनता रहेगा. तुम प्रयोग करोगे, तो निकलेगा. नहीं करोगे, तो भी समय-समय पर शरीर उसे पेशाब के रास्ते उत्सर्जित कर देगा. बहुत से शुक्राणु भीतर-भीतर ही नष्ट हो जाएँगे. शरीर उनकी सामग्री से नये शुक्राणुओं का निर्माण कर लेगा.

लड़के को चाहिए कि वह हस्तमैथुन के अपराध-बोध से बाहर निकले. यौवन आया है, तो मैथुन की अपेक्षा है. यह स्वाभाविक है. उत्तेजना की आत्मतुष्टि कोई अपराध नहीं. न उससे कोई नैतिक-शारीरिक-मानसिक हानि होती है. जो इस प्रकार से से तुष्ट नहीं होते, उनके लिए सीधे सुलभ स्त्री-सहवास का मार्ग है. देह में उठते नैसर्गिक यौन-ज्वार के शमन का और कोई मार्ग नहीं.

बुरी मात्र यौन-कुण्ठाएँ हैं. बुरा मात्र स्वीकृति के बिना भी स्त्री को भोग्या मान लेना है. घिनौना मात्र बलात्कार है.

"आओ लड़के, अब बात फिर घुटने की सूजन की करें जिसके कारण तुम लँगड़ा रहे हो सात साल से, जब तुम जवान भी न हुए थे."

* * *